दबंगों का हिमायती क्यों?

असहमतियों को स्वीकार करने वाले देश में उन लोगों की हत्याओं के क्या मायने हैं जो बिना किसी अतिरिक्त सत्ता तथा सुरक्षा के सामान्य अभिव्यक्ति-अधिकार के आधार पर लोक सेवक के रूप में लोगों को सत्ता के बारे में और सत्ता को लोगों के बारे में संवाद का सेतु बनकर सतत काम करते आ रहे हैं। बड़े अभिमान के साथ दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र का कलश अपने सिर पर रखकर भी हम उस आवाज को दबाना चाहते हैं जिसके बारे में सभी बड़े ओहदेदार फक्र से कहते रहे हैं कि हमें प्रेस या मीडिया की आजादी पर बंदिश स्वीकार नहीं है। ऐसा देश, यदि दुनिया में पत्रकारिता और पत्रकारों के लिए असुरक्षित देशों में गिना जाने लगा हो तो उन सभी लोगों को अपना सिर झुका लेना चाहिये जो प्रेस को लोकतंत्र और लोकतांत्रिकता के लिए अनिवार्य और आवश्यक मानते हैं और जो पूर्व में आये ऐसे अवसरों पर सब भेदों को भूलकर पत्रकारिता की आजादी के लिए एकजुट होकर लड़े थे।

सिर या नजर झुकाना इसलिए आवश्यक लगता है कि उत्तर प्रदेश या मध्यप्रदेश ही नहीं, पिछले एक दशक में भारत के लगभग सभी राज्यों में पत्रकारों को उनके कामों में बाधायें पैदा करते हुए मारा-पीटा गया और कुछ जगह तो परिवार जनों के साथ उनकी हत्या की गई। हर बार सुरक्षा के आश्वासनों के बावजूद, इस तरह की घटनायें पूर्ववत जारी रहीं हैं। अब भी शाहजहांपुर के जगेन्द्र सिंह या कटंगी के संदीप कोठारी की हत्याओं के बाद भी ऐसा होना जारी है। सरकार, पुलिस या सत्ता से जुड़े लोग अब भी सुरक्षा के उसी कोरस को दोहरा रहे हैं, पर न तो दबंगों पर कोई अंकुश है और न ही सत्ता, प्रशासन, पूंजी तथा मलंगों का गठबंधन अपने किये पर शर्मसार दीखता है। पत्रकारों की सुरक्षा के लिए कार्यरत सीपेजी या मीडिया सेफ्टी ग्रुप या रिपोर्टर्स बिदाउट बार्डर्स आदि संस्थाओं ने भारत को अब उन देशों में गिनना प्रारंभ कर दिया है जहां पत्रकारिता करना जान पर खेलना जैसा है। सीपेजी (CPJ) ने तो भारत में 2013 में हुई पत्रकारों की हत्याओं के संदर्भ में उसे सीरिया के बाद दूसरे क्रम पर रखा है। ऐसे ही मीडिया सेफ्टी ग्रुप ने 2010 के बाद पत्रकारों की दुनिया भर में हुई हत्याओं के संदर्भ में पहले पांच देशों में से दूसरे क्रम पर रखा है। सीरिया पहले क्रम पर है और इसके बाद भारत, पाकिस्तान, मिश्र, और सोमालिया हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार 1992 से अब तक 66 से अधिक पत्रकारों की हत्याऐं हो चुकी हैं और इनको मारने वालों पर कोई ऐसी कार्यवाही नहीं हुई है जिससे उन दबंगों को सबक मिल सके। सोचें कि जगेन्द्र का क्या कुसूर था। एक मंत्री के विरोध में लिख ही तो रहा था और धमकाने के बाद भी अपनी कलम को नहीं रोक रहा था। उसे उन पुलिस

वालों ने जिन्दा जलाकर मार दिया जिन पर अपराधियों को सजा देने का कोई विधिक अधिकार ही नहीं है। पांच पुलिस के सामान्य सिपाहियों को निलम्बित करके या उसके परिवार को आर्थिक सहायता देकर समाज के रोष और परिवार के आंसू पोंछने की कोशिश क्या पर्याप्त कही जा सकती है। ऐसा ही संदीप कोठारी के बारे में है। रेत और अन्य खनन माफियाओं के बारे में लिख ही तो रहा था। उसने शिकायत ही तो की थी। यह सब तो विधि के अनुसार ही था। जो खनन माफिया कर रहे थे, वह तो अपराध था। समाज और देश को कमजोर करने का काम था। इस पर दबंगों का साहस देखिये कि संदीप को अगवा करके मारा-पीटा और बाद में जलाकर मार दिया। कुछ लोग पकड़े गये हैं पर क्या वे माफिया के असरदार हैं या उनके कारिंदे। ऐसा दोनों मामलों में नहीं हुआ कि दबंगों को सजा के पहले भी सबक मिलता और समाज तथा समाज के विकास के लिए काम करने वाले लोग अपने को सुरक्षित समझते।

वह प्रवृत्ति जिससे ऐसे अमानवीय और संगीन अपराध होते हैं, अब भी पोषित है। उनके चेहरों पर पर्दा डालकर हम क्या कर रहे हैं। विरोध में लिखने वाले पत्रकारों को धमकाना, केमरा छीन लेना, उन्हें किराये के गुंडों से पिटवाना, बाइक में बांधकर घसीटना, उनके सरकारी आवास से सामान फिकवा कर बेघर कर देना, उनकी नौकरी समाप्त करने के लिए अपनी शक्ति, हैसियत और सत्ता का उपयोग करना आदि तमाम बातें करते हुए ये लोग क्या कहना चाहते हैं। यही तो न कि हम कुछ भी करें, राज हमारा है, हमारे लोगों का है, कानून और नियम सब हमारे नीचे हैं। सोचें कि क्या यह वही प्रवृत्ति नहीं है जो अंग्रेजों की थी या उससे पहले राजाओं की थी। वे भी तो यही कह रहे थे कि हम लूटें या बरबाद करें, उससे तुमको क्या ?

तब हम विरोध कर रहे थे, उनकी गोलियां, लाठियाँ खाकर और जेल जाकर या सिर कटवाकर। आजादी के बाद लाठियां खाने और अहिल्या बाई सहित तमाम लोगों के आदर्शों का उपदेश देने वाले वे लोग भी जब उसी प्रवृत्ति का अनुकरण और अनुसरण करें तब हम किस तरह को आजादी की व्याख्या कर रहे हैं। क्यों सत्ता और प्रशासन में ऐसा साहस नहीं है जो अपराध की पूरी पड़ताल के पहले कम से कम इतना तो साफ करें और कहे कि अपराध करने वाला और उसका वह दबंग जो हमारे पोषण में है, उससे हम पृथक होते हैं। मंत्री को मंत्रीमंडल से निकालना या खनन माफिया को बेपर्दा करना कोई बड़ा काम नहीं है और न ऐसा करना सजा ही है। अपने विरोध में लिखने वाले या शिकायत करने वाले को बेघर या नौकरी से निकालने का प्रयत्न न करना समाज को यह संदेश देना है कि कानून, नियम की मर्यादा और परिधि के भीतर कोई रिश्ता या निजता पोषित और पल्लवित नहीं की जा रहा है या नहीं की जायेगी। सोचें कि गांधी, तिलक, लोहिया, सावरकर या

दीनदयाल उपाध्याय बेहतर, आजाद, मूल्याधारित समाज के लिए पत्रकारिता को माध्यम क्यों बनाना चाह रहे थे।

यह भी सोचे कि आजादी के बाद के विकास और परिवर्तन में आने वाली बाधाओं को रोकने और उनको उजागर करने में पत्रकारों का योगदान कितना रहा है।

यह भी सोचें कि पत्रकारिता को क्या आप चाटुकारिता, मुसाहिबी, मुखबिरी या अपनी प्रसिध्दि के ढिंढोरची के रूप में परिवर्तित करना चाहते हैं? अपने गिरेबान में झांककर देखें कि क्या यह सच नहीं है कि पत्रकारिता के मूल्यों में आये विचलन में खुद सत्ता, प्रशासन या बाजार की भूमिका कितनी अधिक रही है। एक बार बहुत गहरे और विस्तार में जाकर इन सब नियामकों, नीति तथा नियमों पर नियंत्रण करने वालों को सोचना चाहिये कि पत्रकारिता की स्वतंत्रता समाज के विकास और लोकतांत्रिकता के लिए आवश्यक है या नहीं। अगर इन सभी लोगों को लगता है कि मीडिया की सच मुच में आवश्यकता है तो उसे आजादी से तथा उसकी असहमतियों को स्वीकार करते हुए अबाध काम करने देना होगा। वह मानवीय और सकारात्मक तथा विकासगामी मूल्यों पर चले इसके लिए जरूर कहा जा सकता है पर उसको नियम विरोधी और आपराधिक कार्यों को बेपर्दा न करने के लिए डराना, धमकाना और अमानवीय बर्ताव करना बंद करना होगा। जो लोग भी ऐसा करते हैं वे लोकतंत्र और समाज के विरोधी हैं, यह स्वीकार कर उनको जरूर साहस के साथ डराने की आज बहुत अधिक आवश्यकता है।

****